

गठबंधन से इतना डरते क्यों हैं मोदी?



■ प्रकाश करात

वरिष्ठ माकपा नेता

चुनाव

प्रचार का कोई ऐसा दिन नहीं जाता होगा जब नरेन्द्र मोदी महागठबंधन या विपक्षी गठबंधन को 'महामिलावट' कहकर उस पर हमला न करते हों और गठबंधन में शामिल विपक्षी पार्टियों को सत्ता के भूखे अवसरवादियों की भीड़ बनाकर पेश करने की कोशिश न करते हों।

चुनाव प्रचार की शुरुआत से ही मोदी के भाषणों में लगातार यह प्रचार शामिल रहा है कि तथ्यांकित 'महामिलावटी' सरकार आई तो विकास खतरे में पड़ जाएगा; वह तो एक कमजोर सरकार होगी जो राष्ट्रीय सुरक्षा सुनिश्चित नहीं कर पाएगी, आदि। और यह भी कि किस तरह उत्तर प्रदेश तथा अन्य जगहों पर सामने आए विपक्षी गठबंधन तो सिद्धांतहीन तथा अवसरवादी गिरोहबंदी के सिवा और कुछ नहीं हैं, जिनका मकसद इन नेताओं के निजी फायदे के लिए किसी न किसी तरह सत्ता हथियाना है। विपक्षी गठबंधन के खिलाफ इस तरह का मुसलसल हमला वास्तव में दिखाता है कि मोदी को इसका किताब भारी डर है कि एक विपक्षी गठबंधन सरकार उनके राज का अंत कर सकती है।

सच्चाई यह है कि इक्का-दुक्का अपवादों को छोड़ दें तो 1977 के बाद से हमारे देश में गठबंधन सरकारों का बनना ही

सामान्य नियम रहा है। मोदी के दायों के विपरीत सच्चाई यह है कि गठबंधन सरकारें काफी स्थिर भी साबित हुई हैं, और 'विकास' के मामले में भी ऐसी सरकारों का रिकॉर्ड पूंजीवादी विकास के दायरे में ही काम करती रही दूसरी सभी सरकारों के मुकाबले में कोई बुरा नहीं रहा। सच तो यह है कि 1999-2004 के दौर में वाजपेयी के नेतृत्व वाली गठबंधन सरकार को तो खुद भाजपा ही 'शाइनिंग इंडिया' का मॉडल बता कर पेश किया करती थी।

चुनावोत्तर गठबंधन और स्थिर सरकार

मोदी के दायों के विपरीत वास्तव में यह मानने का कोई कारण नहीं है कि किसी साझा न्यूनतम कार्यक्रम पर आधारित चुनावोत्तर गठबंधन स्थिर सरकार का आधार नहीं बन सकता। आखिरकार, 2004 के चुनाव के बाद यही तो हुआ था जब यूपीए का गठन हुआ था, और एक साझा न्यूनतम कार्यक्रम तैयार किया गया था। वास्तव में खुद भाजपा का भी तो यही अनुभव रहा है। 1998 तथा 1999 में भाजपा ने चुनाव के बाद अपने गठबंधन एनडीए के लिए आधार तैयार करने के लिए एक एजेंडा फॉर गवर्नेंस अपनाया था।

इस प्रक्रिया में उस समय

भाजपा ने इस तरह की

गठबंधन सरकार का रास्ता

आसान करने के लिए

अपनी तीन बुनियादी

मांगों को अलग

रखना तक मंजूर

किया था। यथा 370 खत्म किया जाना, राम मंदिर का निर्माण, और समान नागरिक संहिता। इस तरह की गठबंधन सरकारों की निंदा करते हुए मोदी वास्तव में खुद अपनी पार्टी की गठबंधन सरकारों की भी निंदा कर रहे होते हैं। इसी प्रकार मोदी का कथ्यांकित महामिलावटी गिरोह पर यह आरोप लगाना भी सरसर बेतुका है कि उसके सरकार में रहते तो माओवादी गतिविधियों में तेजी आई थी, और मोदी का यह दावा भी बेतुका है कि उनकी सरकार ने अपनी कारगर सुरक्षा कार्रवाइयों से इन गतिविधियों पर अंकुश लगा दिया है। मोदी की इस शंका का झूठ मौजूदा चुनाव अभियान के दौरान ही उस समय बेनकाब हो गया जब महाराष्ट्र के गृहचिरोली जिले में माओवादियों के हमले में 15 सुरक्षाकर्मी मारे गए। छत्तीसगढ़ में दंतेवाड़ा में भाजपा विधायक और उनके चार सुरक्षाकर्मीयों की उस समय मौत हो गई जब वम

से उनकी कार को उड़ा दिया गया। हम सबने यह भी देखा है कि किस तरह मोदी की 'शुद्ध' सरकार ने जम्मूकश्मीर में सुरक्षा के पहलू से हालात को बंद से बदतर बनाने का ही काम किया है। वहां 2014 से 2019 के बीच आतंकवादी हमलों की संख्या जहां 109 से बढ़कर 626 पर पहुंच गई, वहीं हमलों में मरने वाले सुरक्षाकर्मीयों की संख्या 130 से बढ़कर 483 पर पहुंच गई, जो बहुत ज्यादा है।

इसलिए असल मुद्दा यह नहीं है कि चुनाव के बाद देश में एक पार्टी के बहुमत पर आधारित सरकार बनती है, या फिर गठबंधन की सरकार। असल मुद्दा यह है कि जो सरकार बनती है, वह किस तरह की नीतियों तथा कार्यक्रमों पर चलने जा रही है। आखिरकार, देश पर नोटबंदी की विध्वंसक नीति तो ऐसी कथित फैसलाकुन सरकार ने ही थोपी थी, जो लोक सभा में भाजपा के अकेले अपने बहुमत पर टिकी हुई थी। इस सत्यानाशी कदम के लिए क्या किसी को जिम्मेदार ठहराया गया?

सपा-बसपा पर निशाना

जाहिर है कि मोदी के निशाने पर खास तौर पर उत्तर प्रदेश का सपा-बसपा-रालोद का गठबंधन है क्योंकि इसी गठबंधन से भाजपा को देश के सबसे बड़े राज्य में फैसलाकुन शिकस्त का खतरा नजर आ रहा है। यह दूसरी बात है कि विपक्षी गठबंधनों पर हमले करने के जोश में मोदी भूल जाते हैं कि एनडीए तो खुद ही

मोदी के निशाने पर खास तौर पर उत्तर

प्रदेश का सपा-बसपा-रालोद का

गठबंधन है क्योंकि इसी गठबंधन से

भाजपा को देश के सबसे बड़े राज्य में

फैसलाकुन शिकस्त का खतरा नजर

आ रहा है। यह दूसरी बात है कि

विपक्षी गठबंधनों पर हमले करने के

जोश में मोदी भूल जाते हैं कि एनडीए

तो खुद ही 40 पार्टियों का गठबंधन है

40 पार्टियों का गठबंधन है। वास्तव में अगर कोई महागठबंधन है, तो वह तो खुद भाजपा ने ही खड़ा किया हुआ है। सच तो यह है कि मोदी ऐसे चुनावोत्तर गठबंधन के अपने डर पर काबू पाने की कोशिश रहे हैं, जो 23 मई के बाद केंद्र में वैकल्पिक धर्मनिरपेक्ष सरकार बना सकता है। ऐसी सरकार साझा न्यूनतम कार्यक्रम के आधार पर बनेगी जिसे गठबंधन में शामिल होने वाली सभी पार्टियां मिलकर अपनाएंगी। गठबंधन के खिलाफ अपने हमलों के जरिए मोदी वास्तव में अपने इसी के डर का सबूत पेश कर रहे हैं कि ऐसा गठबंधन उनसे सत्ता छीनने जा रहा है।

झपट्टा मारने को बेचैन कांग्रेस



■ प्रमोद जोशी

वरिष्ठ पत्रकार

एक साल पहले इन्हीं दिनों कर्नाटक में सरकार बनाने की गहमागहमी चल रही थी। इस वक्त लगभग वैसी ही गहमागहमी है। खास तौर से निगाहें कांग्रेस पार्टी पर हैं। पिछले साल कर्नाटक विधानसभा के परिणाम आने पर जैसे ही स्पष्ट हुआ कि किसी को पूर्ण बहुमत मिलने वाला नहीं है, कांग्रेस ने जनता दल (एस) को बगैर शर्त समर्थन देने की घोषणा कर दी। यकीनन इस बार भी बीजेपी और खास तौर से नरेन्द्र मोदी को सत्ता से हटाने के लिए कांग्रेस हर तरह के त्याग कर देगी बशर्ते वह इस स्थिति में हो। कर्नाटक में मतदान के बाद रात में एकजुट पोल के निष्कर्षों से समझ में आ गया था कि किसी को स्पष्ट बहुमत मिलने वाला नहीं है। इस बार भी 19 की रात से इस बात के संकेत मिलने कि क्या होने वाला है।

कांग्रेस पार्टी अपने अस्तित्व के सबसे महत्वपूर्ण मोड़ पर है। फिलहाल, उसे तीन बातों को स्पष्ट करना है:-

1. उसकी फौरी रणनीति क्या है? मसलन, दिल्ली में एनडीए सरकार के स्थान पर महागठबंधन की सरकार बन भी जाए, तब क्या होगा? कांग्रेस इस एकता के केंद्र में होगी या परिधि में? वह इन्हें चलाएगी या वे इसे चलाएंगे? लोक सभा और राज्य सभा में समीकरण किस प्रकार के होंगे? क्या ऐसी सरकार लंबे समय तक चलेगी? नहीं चली तो पार्टी को उसका नफानुकसान किस प्रकार का होगा?

2. उसकी दीर्घकालीन रणनीति क्या है? क्या वह उत्तर भारत के राज्यों में फिर से महत्वपूर्ण ताकत बनकर वापस आना चाहती है? पिछले तीन दशक में वह लगातार कमजोर हुई है। यह बात उसके वोट प्रतिशत से जाहिर है। सवाल केवल वोट प्रतिशत का नहीं, लोक सभा और विधानसभाओं में सीटों का है।

3. कांग्रेस की दीर्घकालीन राजनीतिक दृष्टि क्या है? क्या वह 1991 के आर्थिक उदारीकरण के रास्ते से हट चुकी है? यदि ऐसा है, तो उसका नया रास्ता क्या है? उसके संगठन की रक्षा कैसी है? पार्टी जल्दबाजी में फैसले करेगी या अच्छी तरह सोचविचार की संरचना का विकास करेगी?

मोदी को रोकने की रणनीति

दिल्ली में बीजेपी को सरकार बनाने से रोकना उसकी फौरी रणनीति है।

पर उसे यह भी तो देखना होगा कि बीजेपी का जनाधार क्यों बढ़ा? 1999 में कांग्रेस ने अटलबिहारी वाजपेयी की सरकार को एक वोट से हारने में सफलता जरूर प्राप्त कर ली थी, पर उसी दौरान बीजेपी ने दूसरे अपने सहयोगी दलों के साथ मिलकर एनडीए के आधार को मजबूत कर लिया। गठबंधन राजनीति को लेकर कांग्रेस का इंद्र आज भी कायम है। कांग्रेस को अपने राजनीतिक दृष्टिकोण को भी धार देनी पड़ेगी। मोदी या बीजेपी को सरकार बनाने से रोकने में उसे सफलता मिल भी जाएगी तो इसका मतलब यह नहीं है कि उसकी अंतिम विजय हो गई है। उसकी दीर्घकालीन रणनीति तथा सफल होगी जब उत्तर भारत में उसकी वापसी हो। इसका मतलब है कि उसका उस सपा-बसपा गठबंधन से भी टकराव होगा, जिसे वह समर्थन देने पर विचार कर रही है। खबर है कि सोनिया गांधी, अखिलेश यादव और मायावती के संपर्क में भी हैं।

कुछ सवालों के उत्तर 23 को ही मिलेंगे। कांग्रेसी नेतृत्व और उसके साथ खड़े विरोधी दलों के नेता बेशक, बीजेपी को किसी भी हद तक जाकर रोके, पर तभी जब परिणाम उन्हें ऐसा करने का मौका देगा। भले ही इन पार्टियों ने चुनावपूर्व गठबंधन नहीं किया पर भीतर ही तौर पर एक प्रकार की सहमति जरूर है। यह स्पष्ट नहीं है, इस सहमति में कितने नेता शामिल हैं। और क्या बीजेपी ने कोई जवाबी-रणनीति नहीं बनाई है? क्या उसने विरोधी दलों के नेताओं से बात नहीं की है? क्या वह अपने विरोधियों को एकताबद्ध होने का पूरा मौका देगी?

विरोधी नेताओं का जमावड़ा

चुनाव का आखिरी दौर खत्म होने के पहले के घटनाक्रम पर गौर करें तो कुछ संकेत मिलते हैं। परिणाम वाले दिन यानी 23 मई को सोनिया के नेतृत्व में विरोधी दलों की बैठक होने वाली है। पहले खबरें थीं कि 21 मई को बैठक होगी। फिर खबरें आईं कि बैठक नहीं होगी। पर अब डीएमके के नेता स्टालिन ने इस बात की पुष्टि की है कि उन्हें 23 की बैठक का निमंत्रण मिला है। इस बैठक में चंद्रबाबू नायडू और शरद पवार हाजिर होंगे। एचडी देवगौड़ा भी शायद आएंगे। अनुमान है कि विरोधी दलों के नेता राष्ट्रपति से मिलकर उन्हें इस आशय का पत्र दे सकते हैं कि वे सबसे बड़े दल को सरकार बनाने का निमंत्रण न दें। ये नेता इंदीरा और चुनाव आयोग की शिकायतें भी कर सकते हैं।

कांग्रेस पार्टी ने संपूर्ण विपक्षी नेतृत्व को 23 को दिल्ली में आने का निमंत्रण दिया है। पार्टी को लगता है कि फैसला तेजी से करना पड़ सकता है। चुनाव प्रचार के पूरे दौर में सोनिया खामोश रही। पर वे विरोधी दलों के

नेताओं से संपर्क में थीं। यकीनन वे किसी रणनीति के साथ तैयार बैठती हैं। अनुमान है कि कांग्रेस इस बार फिर कर्नाटक की रणनीति को दोहरा सकती है यानी कि अपने हितों को पीछे रखते हुए विरोधी दलों को आगे आने का मौका देगी।

कांग्रेसी त्याग?

कांग्रेस के वरिष्ठ नेता गुलाम नबी आजाद ने कहा है कि हमें प्रधानमंत्री पद नहीं मिलता, तो न मिले। हमारा फोकस इस बात पर है कि बीजेपी की सरकार नहीं बननी चाहिए। आम राय कांग्रेस के पक्ष में बनी तो ठीक। हमें हर हाल में गैररनडीए, गैर-बीजेपी सरकार बनानी है। पिछले कुछ दिन में तेलंगाना के मुख्यमंत्री के चंद्रशेखर राव सक्रिय हुए हैं।

उनकी दिलचस्पी गैर-भाजपा, गैर-कांग्रेस सरकार बनाने में है। इस पर डीएमके के नेता एमके स्टालिन ने कहा था कि तीसरे मोर्चे की उम्मीदें नहीं हैं, पर अब कांग्रेस संकेत दे रही है कि वह इसके लिए भी तैयार है। महत्वपूर्ण बात यह है कि सोनिया गांधी चंद्रशेखर राव और नवीन पटनायक को भी इस विमर्श में शामिल करने को उत्सुक हैं। ममता बनर्जी, अखिलेश और मायावती को भी यानी कि जिस तीसरे मोर्चे की परिकल्पना को बढ़ावा जा रहा है, कांग्रेस शायद उसे भी मान ले। पर यह तभी होगा जब एनडीए बहुमत से दूर रहे और कांग्रेस समेत दूसरे विरोधी दल बहुमत बना लें। नेतृत्व का सवाल उसके बाद उठेगा। इस तरह के बाद भी क्या यह व्यवस्था लंबी चलेगी? क्या हम 1997-98 के दौर में वापस नहीं चले जाएंगे?

पिछले साल 15 मई को जब परिणाम आ ही रहे थे कि कांग्रेस ने घोषणा की कि हम एनडीए कुमारस्वामी को मुख्यमंत्री बनाने को तैयार हैं। बंगलुरु में मौजूद गुलाम नबी आजाद और अशोक गहलोत मीडिया से बात कर रहे थे कि उधर खबर आई कि सोनिया ने देवगौड़ा से फोन पर बात कर ली है। दिल्ली में कांग्रेस हार्ड कमान ने बेहद तेज गति से काम किया और इस तेज घटनाक्रम में बीजेपी बैकफुट पर चली गई। उसके बाद जो हुआ, उससे बीजेपी के माथे पर कलंक ही लगा। पिछले एक साल में कर्नाटक सरकार के अंतर्विरोध भी सामने आए हैं। चूंकि सवाल अस्तित्व का है, इसलिए दोनों पक्षों ने अपने आप को रोक रखा है। अब इन अंतर्विरोधों के खुलने की घड़ी भी है।

तीसरे मोर्चे वाले क्या करेंगे?

राजनीतिक गलियारों में खबरें हैं कि सोनिया ने कमल नाथ को बीजद के नवीन पटनायक, व्हाईएसएफ के जगन मोहन रेड्डी और टीआरएस के चंद्रशेखर राव से संपर्क साधने के काम पर लगाया है। इनके साथ अनौपचारिक बातें हो रही हैं। पर व्हाईएसएफ और तेलंगा के अंतर्विरोधों को वे कैसे सुलझाएंगी? दोनों क्या एक ही गाड़ी में सवार हो सकते हैं? जगन मोहन रेड्डी आंध्र प्रदेश को विशेष राज्य का दर्जा दिलाना चाहते हैं। इस वक्त कांग्रेस कोई भी मांग पूरी कर देगी। अंततः में भी कांग्रेस ऐसी मांगों को मानती रही है। 2004 के चुनाव में उसने तेलंगाना की मांग को मानकर टीआरएस को इसी तरह अपने साथ

लिया था। राजनीतिक गलियारों में चर्चा है कि 21 या उससे भी ज्यादा राजनीतिक दल परिणाम घोषित होते ही वैकल्पिक सरकार को अपना समर्थन घोषित कर दें। पर वह वैकल्पिक सरकार क्या होगी, कैसी होगी और किसकी होगी? क्या राष्ट्रपति इस बात को मानेंगे? यह अटकल इस उम्मीद पर है कि जनानेश खंडित होगा। खंडित जनानेश होने के बावजूद पार्टियों का संख्या बल महत्वपूर्ण होगा। उनके आपसी रिश्ते सामने आएंगे।

पहेलियां ही पहेलियां

एक बात जरूर साफ है कि बीजेपी और कांग्रेस को मदद के बगैर दिल्ली में सरकार नहीं बनेगी। कांग्रेसी अवधारणा इसी समझ के इर्द-गिर्द है। यदि कांग्रेस किसी गैर-भाजपा सरकार को समर्थन देने के लिए तैयार बैठती है, तो मजबूरी में बीजेपी भी ऐसी ही किसी रणनीति पर जा सकती है। इन सारी बातों के साथ तमाम किन्तुपरन्तु जुड़े हैं, जो चुनाव परिणामों पर निर्भर हैं। सबसे बड़ी पहेली एनडीए को प्रभाव को लेकर है। उसका परभाव होगा भी या नहीं? क्या वह कांग्रेसी स्वप्न सच होगा या सपना ही रहेगा? लोक सभा के साथ आंध्र, ओडिशा, सिक्किम और अरुणाचल प्रदेश विधानसभाओं के चुनाव भी हो रहे हैं। इनमें आंध्र और ओडिशा के परिणामों का केंद्र की सरकार के गठन के साथ रिश्ता है। दिल्ली में एनडीए आया तो कर्नाटक में कांग्रेस-जेडीएस गठबंधन की शकल भी बदल सकती है। मोदी ने बंगाल के 40 विधायकों के 'आउटरीच' की बात कही थी। उसकी सच्चाई भी सामने आएगी। मध्य प्रदेश और राजस्थान में कांग्रेस पार्टी बहुत क्षीण बहुमत के सहारे है।



इशरूदरभट्ट • जे.बि.पी.

अभी तो अपरिहार्य दिख रहा गठबंधन



■ अरविंद कुमार सिंह

वरिष्ठ पत्रकार और संसदीय मामलों के जानकार

हाल

में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने गठबंधन सरकार चलाने में अपनी सक्षमता को लेकर कई बातें कहीं। उनका कहना था कि जब वे भाजपा संगठन के लिए काम कर रहे थे, तो हरियाणा, जम्मूकश्मीर और गुजरात में गठबंधन के लिए काम किया। अब तो उनका पांच साल का काम बोल रहा है। इस नाते वे पहले से अधिक सीटों पर जीतेगे और भाजपा ही नहीं एनडीए सांसदों की संख्या भी बढ़ेगी। प्रधानमंत्री ने यह बात भी खास तौर पर कही कि 2014 में पूर्ण बहुमत में आने के बाद हमने अहंकार नहीं पाला है, और आगे कितना भी बहुमत मिले हम सभी सांघियों को साथ लेकर चलेंगे। हमारे लिए क्षेत्रीय दलों को जोड़ना देश की एकता को जोड़ने जैसा है। गठबंधन को लेकर एनडीए ही नहीं, कांग्रेस भी ऐसा ही प्रयास कर रही है। सोनिया गांधी, जो एक दशक तक यूपीए की सूत्रधार रहीं, भी क्षेत्रीय दलों के साथ संवाद बनाए हुए हैं, और चुनाव के दिन आगे की रणनीति को लेकर अलग बैठक करने जा रही हैं।

भारत में राज्यों में काफी समय से गठबंधन की सरकार चल रही हैं। वामपंथियों ने प. बंगाल में तीन दशक से अधिक समय तक गठबंधन की सरकार चलाई। लेकिन केंद्र में 1990 के दशक के बाद गठबंधन और अल्पमत सरकारों का दौर आया और फिर गठबंधन एक सच्चाई बन गया है। यह अलग बात है कि इससे पहले 1977 से 1979 के दौरान चली जनता पार्टी सरकार गठबंधन की सरकार थी, लेकिन विचारों के भेद और आपसी टकराव के नाते वह नहीं चल पाई। बाद में 1989 से 1999 के बीच कई अस्थिर गठबंधन और अल्पमत सरकारें बनीं और कई प्रयोग हुए। मोदी के नेतृत्व में 2014 के चुनाव को छोड़ दें तो 1989 के बाद कोई दल अपने बूते सदन में बहुमत हासिल करने की हालत में नहीं रहा। 2014 में भारतीय जनता पार्टी ने 282 यानी बहुमत बूते हासिल कर लिया, लेकिन भावी राजनीति के तहत गठबंधन को बनाए रखने की विश्वासता बरकरार रही। बीजेपी के नेतृत्व में एनडीए कुल 336 सीटों पर जीता। संसद में तमाम कठिन मौकों पर एनडीए के इस बहुमत का फायदा भी दिखा। 1999 से 2004 के दौरान एनडीए में 24 दल तक रहे लेकिन गौर करें तो देखेंगे कि राम विलास पासवान के नेतृत्व वाले लोक जनशक्ति पार्टी जैसे कई दल ऐसे रहे हैं, जो 1989 के बाद सभी सरकारों का हिस्सा बने।

जब कांग्रेस हुई दोफाड़

भारत में आजादी के बाद केंद्र और राज्यों में कांग्रेस का दबदबा पंडित जवाहर लाल नेहरू की मौत तक जारी रहा, लेकिन उसके बाद कांग्रेस में दरार आने लगी और ऐसी स्थिति बन गई कि 1969 में कांग्रेस दोफाड़ हो गई। उसी साल हुए चुनाव में इंदिरा गांधी जीतीं जरूर। लेकिन उनको 78 सीटों का नुकसान झेलना पड़ा। बाद में 1971 में इंदिरा गांधी के मुकाबले जनसंघ, कांग्रेस (ओ), स्वतंत्र पार्टी और एसएसपी ने एक राष्ट्रीय लोकतांत्रिक फ्रंट नाम जो गठबंधन बनाया उसे आजाद भारत का पहला महत्वपूर्ण गठबंधन कहा जा सकता है। लेकिन उसे करारा झटका लगा और कांग्रेस 352 सीटें जीत गई। लेकिन आपातकाल ने इंदिरा गांधी को झटका दिया और पूरे विपक्ष ने एकजुट होकर इंदिरा गांधी को सत्ता से बाहर कर दिया। हालांकि कुछ ही समय बाद टकराव आरंभ हो गया और पहले मोरारजी देसाई और फिर चौधरी चरण सिंह बिखराव को टाल नहीं सके और सरकार चलते बनी। बाद में एक दशक तक फिर कांग्रेस काबिज रही।

बाद में हमारे संसदीय लोकतंत्र को कई प्रयोगों से गुजरना पड़ा। कांग्रेस से ही बग़ावत करके निकले वीपी सिंह को 1989 में विपक्षी दलों ने अपना नायक बनाया। तेलुगु देशम, डीएमके और असम गण परिषद समेत कई क्षेत्रीय दलों को जोड़ कर तब राष्ट्रीय मोर्चा बना, जिसे सरकार बनाने के लिए पहली बार वाम मोर्चा और भारतीय जनता पार्टी दोनों ने बाहर से समर्थन दिया। लेकिन आपसी टकराव के नाते यह प्रयोग ढंग से चल नहीं पाया। हालांकि राष्ट्रीय मोर्चा सरकार की शुरुआत अच्छी थी। इसने एक जनवरी, 1990 को जब काम के अधिकार को मौलिक अधिकारों की सूची में लाने, खेती तथा ग्रामीण विकास पर बजट का आधा व्यय करने, किसानों को उपज का वाजिब दाम और दस हजार रुपये तक की कर्जमाफी, दूरदर्शन और आकाशवाणी को स्वायत्तता देने, गोपनीयता कानून में संशोधन और पिछड़ों को आरक्षण देने के मुद्दे पर समयबद्ध कार्यक्रम घोषित किया गया तो बहुत उम्मीदें जगी थीं। उसी दौरान लोकपाल विधेयक पेश हुआ जिसके दायरे में प्रधानमंत्री से लेकर सारे मंत्री आ रहे थे। सरकार ने अनुसूचित जाति/जनजाति आयोग को व्यापक शक्तियां दीं और बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर को भारत रत्न से सम्मानित किया। लेकिन 7 अगस्त, 1990 को मंडल आयोग लागू होने के बाद घटनाक्रम ने वीपी सिंह को बुरी तरह अलोकप्रिय बना दिया। अपने निर्माता देवीलाल को उनको बर्खास्त करना पड़ा। बाद में भाजपा नेता लालकृष्ण आडवाणी की अयोध्या रथयात्रा रोकना उनकी सरकार पर ऐसा भारी पड़ा कि भाजपा ने समर्थन वापस ले लिया और 10 नवम्बर, 1990 को उनको प्रधानमंत्री पद से इस्तीफा देना पड़ा। जनता दल टूटा और कांग्रेस की मदद से चंद्रशेखर प्रधानमंत्री बने। पांच दिसम्बर, 1994 को वीपी सिंह ने लोक सभा की सदस्यता से त्यागपत्र देते हुए संसदीय राजनीति से ही संन्यास लेने की घोषणा कर 'नेटजोड़' की राजनीति का एक अन्ध्या समाप्त कर दिया।

जुगाड़ और कुछ तोड़फोड़ की सरकार

1991 के चुनावों में किसी दल को बहुमत नहीं मिला लेकिन कांग्रेस सबसे बड़ी पार्टी बनकर उभरी। जुगाड़ और कुछ तोड़फोड़ से पीवी नरसिंह राव ने पांच साल सरकार चलाई और उसे अल्पमत से बहुमत तक आरक्षण से ले गए। 1996 में भाजपा नेता अटलबिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में भाजपा ने 187 सीटें जीतीं, लेकिन वह बहुमत से दूर रही। सबसे बड़ी पार्टी होने के नाते 16 मई, 1996 को अटल जी को सरकार बनाने का मौका मिला। लेकिन प्रयासों के बाद वे संसद में बहुमत साबित नहीं कर सके और 13 दिन बाद 27 मई, 1996 को सरकार गिर गई। इसके बाद 16 एचडी देवगौड़ा के नेतृत्व में जनता दल, समाजवादी पार्टी, डीएमके, तेलुगु देशम, असम गण परिषद, वाम मोर्चा, तमिल मनीला कांग्रेस, तिवारी कांग्रेस, नेशनल कॉन्फ्रेंस और महाराष्ट्रवादी गोमनाथ पार्टी जैसे दलों ने मिलकर सरकार बनाई, जिसे कांग्रेस ने बाहर से समर्थन दिया। कांग्रेस गठबंधन सरकार के बीच तकरार चलती रही जिसके चलते देवगौड़ा के बाद इंद्र कुमार गुजराल प्रधानमंत्री बने, लेकिन सरकार अधिक दिन चल नहीं पाई।

एक गांधी गठबंधन की पहल के तहत 1998 में भाजपा ने जेडीयू, अन्नाद्रमुक, बीजू जनता दल, शिरोमणि अकाली दल, गुजरात कांग्रेस और शिवसेना से लेकर तेलुगु देशम को जोड़ कर चुनाव मुकाबले में बाजी मारी। यह सरकार गठबंधन सहयोगी एआईएडीएमके की समर्थन वापसी के बाद एक वोट से गिर गई। लेकिन 1999 में 13वें लोक सभा चुनाव में भाजपा ने 16 दलों का गठजोड़ यानी एनडीए गठित कर 299 सीटें जीतीं और सरकार बनाई। बाद में इस गठबंधन का आकार बढ़ा और इसमें कुल 24 दल शामिल हो गए। यह देश का पहला ऐसा गठबंधन था, जिसमें भारत में पहली बार पांच साल का कार्यकाल पूरा किया। इसी प्रयोग की सफलता ने कांग्रेस की तत्कालीन अध्यक्ष सोनिया गांधी को यूपीए बनाने को विश्वास किया। 2004 में कांग्रेस ने डीएमके, राष्ट्रीय जनता दल आदि को साथ लेकर एनडीए को मात दी। वाम मोर्चा और समाजवादी पार्टी ने इस सरकार को बाहर से समर्थन दिया। यह सरकार ठीक-ठाक चली लेकिन 2008 में वाम मोर्चा ने भारत अमेरिका परमाणु समझौते का विरोध करते हुए अपना समर्थन वापस ले लिया। लेकिन यूपीए ने विश्वास मत हासिल कर सरकार बना ली। 2009 के चुनावों में भी यूपीए गठबंधन जीता। तब यूपीए को मिली 262 सीटों में से कांग्रेस ने अकेले 206 सीटें जीती थीं। कांग्रेस के नेतृत्व में लगातार दूसरी बार गठबंधन की सरकार का इतिहास भी भारत में पहली बार बना।

इस तरह से अगर देखें तो केंद्रीय स्तर पर दो सबसे महत्वपूर्ण दल यानी भाजपा और कांग्रेस दोनों ही गठबंधन की ताकत को समझ चुके हैं। खुद कितना भी मजबूत क्यों न हों, वे क्षेत्रीय दलों को सोनिया के सत्ता करने का विचार भी नहीं कर सकते। इसी नाते चाहे नरेन्द्र मोदी हों, या किरीया गांधी और राहुल गांधी उनका प्रयास यह है कि अपने परंपरागत साधियों को साथ रखें और जो बाहर हैं, उनको भी साथ लाने का प्रयास करें। हाल के चुनावी समीकरणों में उदार-बिहारी और वोटों के गुणागुणा ने सारे राजनीतिक दलों को भविष्य के प्रति अतिशक्ति कर रखा है। गठबंधन सहयोगियों में भी कई घाट-घाट का पानी पी चुके हैं। उनका हित जहां सधा वहीं चले गए। कुछ क्षेत्रीय दल अपने में देवगौड़ा जैसा बनने की संभावनाएं देखते हुए अलग राह पर हैं।

गठबंधन सरकारों को चलाया जाना

दोनों प्रमुख दलों ने गठबंधन की सरकारों को चलाना सीख लिया है। 2004 में सोनिया गांधी ने वरिष्ठतम माकपा नेता सोमनाथ चटर्जी को लोक सभा अध्यक्ष बनाया। यूपीए-1 में मनरेगा और सूचना का अधिकार कानून के साथ कई लोक हितवीर काम हुए। किसानों को कर्जमाफी आदि ने भी उसकी लोकप्रियता बढ़ाई थी और इसी आधार पर 2009 में सरकार दोबारा बनी। और बाद में गठबंधन के वार से ही मोदी ने यूपीए को पराजित किया। लेकिन गठबंधन की राजनीति की कई कमजोरियां भी साफ दिख रही हैं, और अपराधीकरण और धन बल की राजनीति को कई छोटे दलों ने हवा दी है। वे केवल जीतने लायक बाहुबली या धनबली लोगों को मैदान में उतार रहे हैं, ताकि संख्या बड़े और उसके सहारे उनकी ताकत। इसी की देन है कि तमाम क्षेत्रीय नेताओं ने राष्ट्रीय पहचान बना ली जो राष्ट्रीय दलों में उनसे बड़ी हैंसियत वाले नेता नहीं बना सके हैं। भ्रष्टाचार भी तेजी से फैला है, और क्षेत्रीयतावाद भी। जीतने के लिए लोकलुभावन वादे वे करते हैं, फिर केंद्र पर दबाव बनाते हैं। 1989 से 2009 के बीच कई पार्टियों ने गठबंधन सरकारों में सतत भागीदारी के साथ अपने को काफी मजबूत कर लिया है। बहुत से मामलों में इनके ही किए धरे का असर था कि 2014 में कांग्रेस महज 44 सीटों पर सिम्त गई और यूपीए सिर्फ 59 सीटें जीत पाया। इसी नाते 16वें लोक सभा में विपक्ष का नेता तक नहीं बन पाया।

बेशक, अटल जी जैसी कद-काठी आज किसी नेता की नहीं है। श्रेय की राजनीति की जगह वे आम सहमति की राजनीति करते रहे। फिर भी उन्होंने साफगोई से माना कि ऐसी सरकार बनाना जितना सरल है, उसे चलाना उतना ही कठिन। उन्होंने गठबंधन सरकार चलाने में तमाम दबावों और विपरीत माहौल के बावजूद एक सामंजस्य बिंदुन की कोशिश की। लेकिन अब गठबंधन के इस दौर में दो प्रमुख दलों के नेतृत्व वाले गठबंधन के अलावा तीसरे मोर्चा या फेडरल फ्रंट भी है। मददात किसे शक्ति देते हैं, और कौनसा गठजोड़ बनता है, फिलहाल सबको निगाहें इसी पर लगी हैं।